चाँदनी चूनर

शकुन्त माथुर

साहित्य भवन प्रा० लि०
इलाहाबाद

चाँदनी चूनर

शकुंत माथुर

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रकाशक
साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड
इलाहाबाद—३

प्रथम संस्करण, १९६०
मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
प्रयाग पत्रिका प्रेस
इलाहाबाद

क्रम-बिंदु

: वक्तव्य :

'चाँदनी चूनर' मेरी कविताओं का पहिला संग्रह है। नियमित रूप से कविता लिखना मैंने सन् इकतालीस से शुरू किया था, किंतु प्रस्तुत पुस्तक में इस काल की कुछ चुनी हुई रचनाएं ही संग्रहीत हैं। मैंने शुरू ही से कभी इनके बारे में यह नहीं सोचा कि यह अमुक शैली, 'स्कूल' या वाद के अन्तर्गत आती हैं। इस रूप में यह रचनाएं पक्ष-रहित हैं और इनमें मैंने जीवन के सहज को ही बांधने की चेष्टा की है।

मैंने जब कविता लिखना आरंभ किया था उस समय छंदविहीन सहज रचनाएं कविता की परिभाषा में नहीं आती थीं। कविता की जो शैलियां तब प्रचलित थीं उनके आगे सरल कथ्य, छोटे छोटे विषय, एकदम निजी (पर्सनल) ईमानदार अनुभूतियां और सामान्य जीवन से उठायी उपमाएं-प्रतीक आदि अजनबी लगते थे। उस समय सहज, अनगढ़ और एक दूसरे ही आंतरिक पैमाने पर लिखी कृतियों की कोई चर्चा नहीं थी, हालांकि प्रयोगवाद में ऊपरी तौर से रूप विधान के प्रयोग हो रहे थे, नए शब्द बन रहे थे, विशेषणों में नयापन आरहा था, पर नज़र अभी वही रोमानी छायावादी थी। वही शब्दयोजना थी और वही काल्पनिक अनुभूतियां; सिर्फ संदर्भ का अन्तर हुआ था। ज़िंदगी के हज़ारों अछूते पहलू अभी अनदेखे पड़े थे। यह इतिहास का ही निर्णय है कि जो चीज़ एक दिन स्वीकृति के दायरे से बाहर थी वही आगे चलकर प्रतिष्ठित हुई और भविष्य की दिशा बनी।

कविता की यह नयी धारा उन समस्त पुराने बंधनों को काटकर आई है जो जीवन की सहज अभिव्यक्ति में बाधक थे। कोई भी वस्तु अकारण उदित नहीं होती, समय की मांग और दबाव से ही उपजती है। जिन लोगों ने नई शैली की कविता को सिर्फ फैशन, पश्चिम की नकल, परंपरा रहित, भ्रष्ट, असामाजिक और कौतुक, तमाशा या चमत्कार कहा उन्होंने उसके असली रूप को नहीं पहिचाना। उन्होंने यह नहीं देखा कि यह कोई थोड़े से लोगों का चलाया बेकार का आंदोलन नहीं है बल्कि एक ऐसा व्यापक रास्ता है जो अब तक बंद था पर जो इस देश की भूमि, विशेषता और नये विकास के अनुकूल था, जिसके खुलते ही सारी चेतना उस पर चल पड़ी, क्योंकि उसे ठीक अभिव्यक्ति का मार्ग मिला था।

नयी कविता व्यक्ति को मूल तत्व मानकर चली, लेकिन वह व्यक्ति कोई अलग-थलग, असाधारण इकाई नहीं था, सामान्य यूनिट था। जन था,

जनता नहीं। व्यक्तित्व हीन समूह-जन भी नहीं किंतु अपनी सामाजिक विशेषता से पूर्ण जागरूक जन। इस चीज़ से न तो प्रगतिवादी समूह-जन की भावना मेल खाती थी, न छायावादी तथा प्रयोगवादी असाधारण व्यक्तित्व या आत्म-लीन हीरो की। नयी कविता के साधारण सामाजिक व्यक्ति में ही उसे सही अभिव्यक्ति प्राप्त हुई। यही इस कविता की युगानुकूलता है।

आज का यंत्रयुगीन जीवन संघर्ष-भरा है और बहुत गतिशील है। इस गतिशीलता ने ही आज की कविता को उसका छोटा आकार दिया है। दूसरी ओर संघर्ष ने उसे वास्तविकता के बिल्कुल निकट लाकर खड़ा कर दिया है। आज का कवि अपने पास की ही वस्तुओं को लेकर उनके वास्तविक रूप पर पड़े परदे उठा रहा है। सचाई और ईमानदारी से उसे देखना चाह रहा है। इसीलिए नयी कविता में वास्तविक जीवन की भाषा, बोलचाल के शब्द, मुहावरे तथा दैनिक जीवन में व्यवहार की जानेवाली चीज़ों के प्रतीक, उपमान आए हैं। आज के कवि ने भारी शब्दों, काल्पनिक उड़ानों और अभेद्य शैली के कृत्रिम बोझ का लबादा उतार फेंका है। कल्पनाओं का स्थान दैनिक सत्यों ने ले लिया है। वह जीवन को आज किसी दूसरे साहित्येतर माध्यम से नहीं देखना चाहता-जैसे राजनीति, पूंजी, प्रभुता, राज्याश्रय या अर्थाश्रय का दबाव होता है। इसके विपरीत वह अपने विवेक, अंतःकरण और वस्तुजगत के अनुभवों का सहारा लेता है और निष्पक्षता से सत्यों का उद्-घाटन करता है। आडंबर विहीन, यथार्थ, अनावृत सत्य के अंकन में आज उसे सबसे अधिक आनन्द प्राप्त होता है। आज वह अधिक ईमानदार है।

इस सहज सत्यकी खोज में लगे स्वाभाविक व्यक्ति के छोटे-छोटे सुख-दुख, उसकी सामाजिक पारिवारिक अनुभूतियां ही मेरी कविता की विषयवस्तु हैं। ये घर-गृहस्थी से उठाए आनन्द के टुकड़े हैं, अनुभूतियों के छोटे-छोटे आइने हैं, जिनमें घर की सहज रसमय दृष्टि से संसार को देखा गया है। घर समाज की एक भरी-पूरी इकाई है, उसका सुखदुख समस्त संसार का सुख-दुख है। उसकी संवेदना, ममता, उदारता, समझदारी ही व्यापक होकर सांस्कृतिक दृष्टि बनती है। उसके तन और मन का स्वास्थ्य और संस्कार समाज का स्वास्थ्य और संस्कार है और उसके विवेकपूर्ण आनंद, मर्यादा और ताज़गी का विस्तार ही मानवीय मूल्य बन जाता है।

मेरी मान्यता है कि :

● नयी शैली की कविता जागरूक साधारण आदमी की कविता है।

● यह कविता दूर की कल्पनाओं में, शब्द जाल में, अलंकरण के नये प्रयोगों की खींचतान में या जबरन थोपी हुई फ़िलासफ़ी में निकटतम सत्यों की वास्तविकता को छिपाना या उस पर पर्दा डालना नहीं चाहती।

● इस कविता की आधारभूमि सामान्यतम घटनाओं की छोटी से छोटी स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ हैं जिससे विज्ञान के सत्य के साथ भाव सत्य का मेल हो सके।

● वह हर स्थिति को स्वीकार करके नए समाधान ढूँढती है, भावुक विरोध से नहीं।

● चूंकि यह कविता वास्तविक जीवन के साधारणतम सत्यों पर आधारित, है इसलिए निष्पक्ष है।

इस कविता के अन्तर्गत वर्तमान से 'एस्केप' की कविता नहीं आ सकती। वर्तमान से एस्केप और कल्पनाओं में सुख रोमांटिक पलायन है, जो अब तक की अधिकांश कविता में रहा है। वह तत्व अब खत्म होता जा रहा है। पहिले वर्तमान को स्वीकार करना, फिर उसमें रमना और विवेक, जिज्ञासा तथा तर्क से उसमें निहित सत्य को ढूंढना ही वैज्ञानिक चिंतन है। इसी आधार पर आगे की नई कविता विकसित होगी और वैज्ञानिक युग के अनुकूल बन सकेगी।

घर, आंगन, चौके से जो संस्कृति, विवेक, अनुशासन तथा रसज्ञता जन्मती है वह बेसिक होती है, स्थायी होती है। इसी कारण समाज की जिस पूर्ण खंड-इकाई में मैं रमी हूँ उसके सुखदुख की आनंदमयी अनुभूतियों को साधारणीकृत करने की चेष्टा मैंने की है। 'बरगद' या 'सितम्बर में आई थी' नामक कविताएँ इसका उदाहरण हैं। घर की विविधता-भरी अनन्त घटनाओं भावनाओं की व्यापकता को मैंने बाँधने की कोशिश की, इसी से मेरी कविताएं एक पैटर्न की नहीं हैं। उपमान घरेलू जीवन से उठाए हैं, भाषा और मुहावरे एकदम गृहस्थी की बोलचाल वाले हैं। 'नदी' शब्द सहज वार्तालाप के बीच 'नदि' की तरह हो जाता है इसलिए उसे 'नदि' ही लिखा है। जिन शब्दों को घरों में असली रूप में जैसे बोला जाता है वही रहने दिए हैं। शैली में कुछ नए प्रयोग भी किए हैं, जैसे उलटवांसी शैली का प्रयोग (विपर्ययों की दुनियां), फ़ेन्टेसी शिल्प जैसे 'क्वांरा कमरा', मात्र वातावरण की चित्रिता से

अपनी बात छिपाकर कहना जैसे 'कुछ नहीं बात' शीर्षक कविता, ग्राम्य प्रतीकों द्वारा पारिवारिक जीवन के चित्र-जैसे 'नीम के फूल,' 'सितम्बर में आई थी', कुछ सूक्तियों की तरह सूत्र, कुछ व्यंग्य-चित्र, हल्की-फुल्की सिचुएशंस-जैसे 'तुम सुन्दर हो, घर सुन्दर हो', कुछ बदलते व्यावहारिक मूल्य-जैसे 'निगाहों ने कहा' और 'बस स्टैंड' आदि।

इन कविताओं में सहज सत्य की स्वीकृति है।

कविताएँ प्रस्तुत हैं।

१८/बी-५, स्टेनले रोड
इलाहाबाद

—शकुन्त माथुर
[२५ अगस्त १९६०]

● जान बूझ कर नहीं जानती

आज मुझे लगता संसार खुशी में डूबा
क्यों
जान बूझकर नहीं जानती
आज मुझे लगता संसार खुशी में डूबा

मां ने पाया अपना धन ज्यों
बहुत दिनों का खोया,
बहुत बड़ी क्वांरी लड़की को
सुघर मिला हो दूल्हा,
मैल भरी दीवारों पर
राजों ने फेरा चूना,
किसी भिखारिन के घर में
बहुत दिनों के पीछे
मंद जला हो चूल्हा,

बूढ़े की काया में फिर से एक बार
यौवन हो कूदा,
पकड़ गया था चोर अकेले कूचे में जो
किसी तरह वह कारागृह से छूट गया हो
या कि अचानक किसी वियोगिनि का पति
लौटा
उसी तरह
आज मुझे लगता संसार खुशी में डूबा
क्यों
जान बूझकर नहीं जानती

●

● गोरी बातें

मेरे मन में गोरी बातें, फैल रही हैं दूध-सी
उठ आई हैं हरी घास पर रंग-बिरंगी, फूल-सी
मेंहदी की झाड़ी में उलझा, पल्ला हल्के चीर का
कौन उठाए भरा रखा घट नदि पै मीठे नीर का

चंदा आता हटा-हटाकर काले बादल भीड़-से
झांक रहा है कभी पखेरू लुक छिप अपने नीड़ से
कूद रहा खरगोश, कभी है लिपट रहा तरु छाल से
उधर अहेरी सोच रहा है बांधे उसको जाल से

थिरक रही कच्चे आंगन में गोरी बहू किसान की
मूंग ज्वार अरहर है फूली, चूनर गहरी धान-सी
लाल-लाल हाथों को देख, मेंहदी भी शरमा गई
देख प्रिया के होंठ रसीले दिल में गर्मी आ गई

उधर खड़ा है वीर बाजरा, हरी-हरी पागड़ वाला
चुप कह मुंह में देती उँगली, हंसती है नरगिस बाला
उसी समय पर बादल बिजली आ गए
उकसी नरगिस के खुले अधर घबरा गए

● चौदहवां साल

क्या जानूं यह निरी अकेली मस्ती है
क्या जानूं टेढ़ी, बलखाती, सीधी, फैली, बिखरी है
कह दूँ पूरा चाँद
चौदहवाँ साल
आखें झुकतीं
नयी कटीली
किंतु अधूरी
आभा खिलती
चमक सुनहरी
उठता है तूफ़ान
खुलते अंगों में भरती है
नित नूतन मुस्कान
विद्युत-सी छितराती, बात बात में
बात न आती

एक अचानक बिखरी लहरी, जान न पाती
ऐसा ये सुन्दर गुलाब उठते खुमार का
चिह्न कहाँ भर पाया
अभी सुखद प्यार का
खतम चौदहवाँ साल
ज्यों चौदस की रात
केवल हंसता चाँद
नहीं कह सकते पूरनमासी

●

● क्वांरा कमरा
[फेन्टेसी]

एकाकी कमरा
पास में क्यारी
डाली पर एक गुलाब
उस पर मधुमाखी
कमरे का कोना
मकड़ी का जाला
मक्खी का फंसना

हरे ढाक के पत्तों का दोना
उसमें भरे फूल
कुछ शूल
अंजलि गोरी
नजरें भोली
तराज़ू के पलड़ों सी इधर उधर डोलीं
तोलीं

पत्तों का दोना
अंजलि गोरी
सपने का सोना

उस ताक़ में
हैजलीन स्नो की शीशी
तेल की खुशबू तीखी
छोटी डिबिया
वैसलीन भरी
नीली बोतल में
कटी सुपारी गरी
दिवाल की घड़ी
किन्हीं उंगलियों ने छुई
घुमा दी सुई

क्या बजा ?
मन को कुछ अच्छा सा लग रहा
जाल और फंसना
गुलाब-मधुमाखी ।
बड़ी मेज़ पर
सुन्दर सा लैम्प
रोशनी तिरछी तेज़
शैल्फ में रखीं किताबें
एक का हैंडिग
गरम काफ़ी की भाप
मन मचला
हूँ !
अच्छा !
एकाकी कमरा—

●

● विपर्ययों की दुनियां
[उलटबांसी शैली में]

घूमने निकला
बाज़ार में
मिल गया हज़ार में
गली के नक्कू हलवाई को
किताब बेचते देखा
बुकसेलर को
नानपाओ सेकते देखा
साहित्यिक
भाड़ पर था
भड़भूंजा अभी दूर कहीं
श्रमदान के अभियान पर था
बहुत कुछ यहाँ खरीदा
झोले में डाला

घर आया
खुले किवाड़ों को बंद किया
ताला लगाया
भीतर घुसा
मैंने भी किताबों के लंबे लंबे
स्लाइसेज़ काटे
शहद लगा लगा खूब चाटे
ज़िंदगी हरी सब्ज़ी के
छिलकों-सी
ला कूड़े पर डाली
कुत्ता आया
सब्ज़ी खा गया
गऊ खड़ी देखती ही रही
समझी सभी कुछ विष्ठा है
जीवन में आज कुछ ऐसी ही निष्ठा है

●

● पहिली विदा

भर आता जी विदा समय
उर में मेघों का भंडार
लिए नयनों में धोई बूंदें
फूलों में एकत्रित कर लीं
केसर जैसी

मृदु पल्लव की गोदी में
पली कली सी
तारों भरे पुलिन में
जैसे खिली जुन्हाई
नित प्रति धूपदान से उड़ती रही
ज्यों
स्वछंद सरगम पर
बंधन-हीन बहार-सी

पद्मा-सी
निज चरण बढ़ाती
धीरे सखियों के सँग
कँपती पीत पताका सी
सूर्य किरण की माल लिए
मेंहदी रंजित हाथों में, ज्यों
विद्युत रेखा आई द्वारे
दूर मेघ के साथ
चली जाने को

●

● बरस बीत गया

सितम्बर में ग्राई थी
पूरा बरस बीत गया
फिर से उठा गीत नया

शरद, शीत, बसंत, गर्मियां
कड़ी धूप, लू, मस्त हवा
ठिठुरन भरी रैन, दिवस
वर्ष भर की धूप-छांह
जीवन का एक वृत्त घूम गया
पूरा बरस बीत गया

याद ग्रा रहा मुझे
वही नीम वाला पेड़
पीपल की छांह

बनाई मीठी मकई की रोटियां
ताज़े बिलोए मठे की कढ़ी
सफेद मक्खन की गोटियां
बुलाती हैं सपनों में
नन्हें भाई-बहिनों की
परिचित पड़ोसियों की
तुतलाती, मीठी बोलियां

प्यारी गोरी गाय
उसकी दूध-पीती बछिया
दो बड़ी भैंसें पंजाब से मंगाई हैं
वो भी अभी ब्याई हैं

गर्मी भर
पापड़ बेले
मंगौड़ी वड़ी बना
वर्ष भर को छुट्टी पा ली
नीबू का शरबत
दही की लस्सी
आइस्क्रीम मशीन की
कुल्फ़ी
मन भर भरकर खिलाई

जाड़ों में साथ साथ
अंगीठी से हाथ तापे
ओले गिरे
कांटे-सी हवा चली

कड़कती सर्दी में
गरम आलू के पराठे, मूंग के बड़े
कचौरी पिट्ठी की खिलाई
अब मैं भर पाई
मैंके की याद आई
पहुंचा दो
भाई मेरा दो बार लौट गया
पूरा बरस बीत गया

बरसात में पहिनीं
हरी लाल साड़ियाँ
रिमझिम फुहार में
चटकीले ब्लाउज़
कसी हुई आंगियां
वसंत में गेंदे के फूल-सी
बाढ़ की नदि भरे कूल-सी
अपने शहद भरे छत्ते पर
बड़ी मधुमक्खी सी
साल भर का रस इकट्ठा हुआ
एक एक कोष्ठ छत्ते का भर गया
और क्या चाहो बता दो
मुझे मेरे मैंके पहुंचा दो
फिर से उठा गीत नया
पूरा बरस बीत गया

●

● बरगद की छाया

विकसित वटवृक्ष
भरा हर्ष
उलझी लटें
फूली फलीं
मिलीं
विलग पत्तों से भरी लटें
झूलतीं अधर में
फूलतीं अधर में
नीचे आ जड़ पकड़तीं
फिर वहीं बरगद में जा मिलतीं
एक
बरगद
छायादार !

सभी पंछी छोटे बड़े
डैने फैला
बसेरा लेते
कड़ी वर्षा
धूप
ओले, बिजली से बचते
पा जाते त्राण
उसी गेह में
अंधियारे उजाले में
छोटे बड़े कृमि
तीक्ष्ण भूख निवारण
गृहस्थी सुव्यवस्थित, सुख से भरपूर
वट-वृक्ष का उदाहरण

सुखी घर की हर गृहणी
नियम परायण
श्रम शक्ति विभूषित
स्वयं
अपने भंडार से
अन्य हित कुछ अवश्य निकालती है
उशीर की सुगंधि-सी सुवर्णा
थोड़ा बहुत बांटती है भरे से
कुछ छांटती है
प्रथा ही सही
एक गाय को
श्वान कौवे को रोटियां
पखेरूओं को

उड़ती चिड़ियों
कबूतरों को
दाने चावल बाजरे के
छत पै डालती हैं
मन हिंडोला सा इसी गृहस्थी में
इसका झूलता है
तन मृगछौना सा इसी से
लिपटता कूदता है

हर डाली बढ़े
पल्लवित, पुष्पित
अलग जड़ पकड़े
अलाभकर देह किसी के लिए किसी की न हो
रसधार एक हो
उसी एक जड़ से मिली रहे
अधिकार से
प्यार से
भूमि कटे न किसी के लिए
कड़ी न हो किसी के लिए
रस जीवन का, जीवन को बांधे रहे
घर भर को
बटी मिली डोर
यद्यपि सूत्र फ़रक़ सभी
पैबंद यही
यही है यज्ञ, हवि भी
यही है वास्तविक जड़ इस विश्व की

●

● निगाहों ने कहा

किसी की निगाहों ने कहा
आओ
भीतर इसके झरना है
बहुत से मंदिर भी देवता भी
सोचा चलूं
दर्शन कर लूं
किन्तु घबराहट बढ़ गई
कहीं इसने बन्द कर लिए पलक
तो
मैं भी–
परियों के देश में
उनके जादुई बाग़ में
सीमा की सरहद में बन्द हो जाऊंगी

फिर कैसे निकल पाऊंगी
नहीं जी
फिर कभी आऊंगी
नमस्ते !

●

● कुछ नहीं बात

रात
दो मसहरी पास पास
अंधकार
सिगरेट का प्रकाश
दो ग्लास पानी
ऐश ट्रे
एक अमेरिकन मैगज़ीन लाइफ़
जो अभी मुड़ा था
इस तरह
दृश्य सनबेदिंग का दिखा था

हलके पांव
भारी पांव

उठे नहीं
धरे नहीं

निःशब्द
कोई खनक नहीं
कोई झनक नहीं
न कोई बात

खांसी बड़ी
खांसी छोटी
ऐसा भी कुछ नहीं
बत्ती जली नहीं
बत्ती बुझी नहीं
गिलास पानी का भरा रहा

कभी आती थी धीमे से
दियासलाई जलाने की आवाज़
या
सिगरेट
सिगरेट की दबी सी रगड़
कभी
अलसेशियन जाता था चुपचाप
जब रात का पंछी बोला था
आम के पेड़ पर
भूंक कर इसीने उड़ाया था
सुनसान रात
कुछ नहीं बात

कोई नया नहीं
कोई ग़ैर नहीं
केवल सिगरेट का प्रकाश
घनी रात

हवा भी कुछ ऐसी नहीं थी तेज़
हिलता परदा
गुलदस्ता गिरता
कोई चौंकता
आता
उसे उठाता
अंकित था न कोई चिन्ह
किसी के आने का
आदी था अलसेशियन ही
पास आने लौट जाने का

●

● दादी

अमावस रात
हल्के तारों की उजियाली में
नये खिलौने
दिवाली सी दादी को
घेर घार कर बैठ गए
कहो कहानी
रंग बिरंगी
बहुत पुरानी
नाव पुरानी भरी झील में तैर गई
कंपी पताका सी वह फिर
लहर लहर में फैल गई
काली सुधियां आईं
झाड़ बनी
अंधियारे में भूत सी

वह बात पुराने चावल की
लाखों वर्षों में डूबी खुशबू केसर बासमती की
सांस सांस पर
खिली
खुली
गहरे अनुभव लेकर
वह रूप रंग इतिहासों का
सलवट पर सलवट में सिकुड़ा
ऐंठ गया
वह दूज चांद चमकीले माथे के नीचे
फैला बिखरा
बड़ी आंधियां
ज्वार उभेड़े
आकर हैं रुक गए
इन कमज़ोर पोरुओं में
उंगलियां हिल रहीं
ज्यों कटी पतंग की डोर
इन्हीं से वेष्ठित हुई
विगत समय की कोर
सूखे पोखर सी
इन मटियाली आँखों के नीचे
देखी थीं वे तस्वीरें
उन बड़ी बड़ी बावड़ी झीलों की
जहाँ पूरनमासी का चाँद चमकता
कितने ही राजकुमारों ने खेले शिकार
खेली चौसर
मख़मल से गुल्लाला

फूलों की हुई मौत
प्यार की हरिणी दौड़ी थी
तेज़ महक से तर
वे गुलाब पाशियां
महलों में वीणा वादन
केवड़े की फलियों सी पांत में
चलीं दासियां
कहो कहानियाँ
खण्डहरों की
आगे के युग की
दक्षिण से फिर धूल उड़ी थी
एक बार मीना में ठेस
जाम में कटुता
मय में धीमी आग लगी थी

हर हर की हुंकार
ओम नाद सी गूंजी थी
फिर फन्दों सी उलझी बातें
नहीं समझ में आने वाली घातें
उठे ग़दर में उन गोरों की घातक
विष पुड़िया सी आंखें

इस अंधड़ में
काल बवंडर में
मिटे
अनूठे दुर्ग
जूझते सिंह

मृदु शावक सोते
कटीं सभी की भुजबल पांखें
हुईं युगों तक बन्दिनी रातें

हवा में कब जमी भाप
कब गिरी बरफ़
तूफान का उठना जाना
खेली हो इस बार आग से
उस बार बरफ से
और शून्य को लम्बे तिनके सा बढ़ते भी
तुमने देखा है
क्यों चुप हुईं अचानक आज, बोलो
इस युग पर जो कसी ग्रन्थि उसे भी खोलो,
बूटी शीघ्र नहीं लगातीं घिस कर
अनुभूति की भभूति—
ये युग
पथ खोए बच्चे सा इसी तिराहे पर
बैठ गया है
इस युग आड़ोलन में
चूने की मूठी सी बैठ गईं क्यों मौन
आखें हैं क्यों बनो बड़ी बड़ी
बावड़ी झीलें
डबडबा आईं
अधिक प्यार से या
मनस्ताप से
सितारों-सी क्यों बरस पड़ीं
इस अमारात में

काले बालों ने आख़िर सुन ही ली
सोने चांदी के तारों से बीती
अमर कहानी

●

● भविष्या

एक मात्र तुम कौन
कौन तुम मौन
आस्थाएं अंधी
निष्क्रियता
जर्जर रुग्ण संस्कृति का
फिर से
समाधान करने
चेतना देने
निर्णय देने
दायित्व, सशक्त ज़िंदगी का

झूठी-सी छाया
अन्तर्विरोध का चित्रण करने
विश्वास, भ्रांति

दो अलग-अलग पहलुओं की
संभाव्य भविष्य में
सीमा निर्धारित करने
निश्चित रूप भरने
जगाने चली आई
शंख बजातीं
घंटा रव करतीं
युग परिवर्तन को है

एक बार चेतना
फिर से कँपकँपाई
सारी पृथ्वी बौखलाई
प्रकृति सब थरथराई

घृणा की गहरी खाई
बर्बरता के पर्वत
रक्त की नदियां
अणु का ह्रास
अकाल, बाढ़
घिनौने पथ पर बढ़ते-बढ़ते
बड़बड़ाई
हर पग का पत्थर एक हृदय
हर काली छाया एक प्रलय
कालिख-पुती धरा पर
एक किरन
तुम कौन
कौन तुम मौन ?

●

● रात और बात

कहां से कहां तक की उठाई बात
लो हारी
सकुच कुछ और भी गई
ये रात
तहों में लिपट चलीं बातें
छोटी हो गईं रातें

खिंच चलीं सूत-सी लम्बी
बन गई पूनी हल्के बादलों की
कली फूल डाल
बुन दिया सलौना वस्त्र
तारक छांह सजाई
रंगरेज ने धनु रंग घोल सारे, चूनर भिगाई

और लगतीं अधिक मीठी
पिछले दिनों से
आज की ये चांदनी रातें
बढ़ चलीं बातें

ये
दीप
इसी से युगों की चांदनी है
रवि कांति
अंधकार की गहराई
नहीं इस दीप की चिरस्वामिनी है
ये मन्द जलता दीप अपने आप

मधु जुन्हाई में मिला दो
ये मिला अवकाश
जो स्वयं ठहर गया देकर अनोखी प्यास
गत्, भविष्यत, वर्तमान का
अमिय रस उंडेल सब
इस दीप में
आस्था भरा ये दीप, उजली रात
आज की ये बात ही अब
वर्तिका-सी दीप में
ज़िंदगी भर
ज़िंदगी से वियोगित होकर भी जलेगी
जब ज्यों समय चलेगा
पांव धर ये भी
सुरभि-सी बहेगी
ये हमारी बात सही तुम मान लो

इस स्वयंप्रभ दीप को
पहिचान लो

इस मन्द जलते दीप के आलोक में
है छिपा निबिड़ अंधकार
मन्द जलते दीप से हारा
युगों युगों का प्रकाश
सहज ही पी लिए इसने
न जाने कितने निकलते प्रात
कितनी समाईं रात
कितने अंधड़ों का इसने भिगोया गात
न समझो व्यर्थ की ये बात
व्यर्थ ही निकल गईं ये सुनहली रात

ये दीप
पुष्प है
यही केन्द्र पराग
जिससे मिल रहे अजीवित भावनाओं को
समुज्ज्वल प्राण
अश्व रवि के मे
रथ सुगति पर
मंद केतन
उड़ता हुआ
धरा से आकाश तक की लहरियों से
घुला मिला
बिछा रहा आलोक कण
किसके यश-सरोवर में कमल लगा रहा

इसे पहिचान लो
जिससे उठ रही धीमे सुरभि सिक्त बयार

कहां से कहां तक की उठाई बात
लो हारी
सकुच कुछ और भी गई
ये रात !

●

● बादल

आकाश पर बदली
भारी बादल
हल्के बादल
घिर रहे
अब वर्षा आएगी

फिर बादल खुलेंगे
धूप दिव्य छाएगी
पर ये भी तो सम्भव है
बादल घिरे ही रहें
कभी खुलें ही नहीं

●

● बरसाती नदि

आयति की सोची नहीं कभी
आयत्त किसी के रही नहीं
मनमानी भरी
मनमानी चढ़ी

छोटी उम्र के चांद ने सभी रस पाया
अन्तर में बहुत कुछ छिपाया
रत्न प्रसूति
बंजर
आभीर पल्ली
सभी को डुबाया
मीलों भरी छाप नाप का
कहीं चिन्ह भी न पाया
न कभी अन्तर में झांका

न अवकाश ही पाया
कुछ क्षण का ही सही
मद लुटाता
प्रलय मचाने वाला जीवन
दो क्षण का सुख
वही सही
पर कैसा
जो बहुत कम को मिल पाया

●

● गाड़ी

धक्का खाकर चली
धक्का खाया तो गिरी
ऐसी कैसी गाड़ी
गाड़ी तो गति है
यति नहीं
श्रम का भान
कैसा विश्राम
जो पड़ाव पर ठहरे कहीं
वह गाड़ी नहीं

●

यात्री के दिवा स्वप्न

गाड़ी
धीरे-धीरे चली
वृक्षों की पांत मिली
छांव घनी
कच्ची राह के गढ़े
झाड़
चिड़ियों का शोर
नाचते मोर
बेरी, करौंदे
गीत
मस्ती
वायु की चाल रुकी भी भली लगी
गाड़ी धीरे धीरे चली

दिखी धूप
बढ़ी ऊब
हड़बड़ाया, घबराया
उठ बैठा
ऐंठी पूंछ बैलों की
गरम हुई गैलों की
धूल, कुछ अधिक बढ़ी, अधिक उड़ी
जितने ही बैल बढ़े
उतने ही भाव भरे
जहाँ जहाँ थे गढ़े
फ़सल पकी
जितनी थी धूप कड़ी
गिरा पसीना
दिखी हसीना
अब घर की सीमा
गाड़ी को फेर दिया
बैल सुस्ताए
औंघाए
सांझ
छप्पर की छांव

●

● सूत्र

दौड़े तो
कहलाए घोड़े हैं
रुके तो
राह के रोड़े हैं
पहुंच सके अपनी मंज़िल पर
ऐसे बहुत थोड़े हैं

●

● सूत्र

दिन दो हैं
विशेष जीवन के
एक
जिस दिन उत्पन्न हुए
द्वितीय काल कवलित हुए
                    शेष तो दौड़ रही लम्बी
                    कहीं पड़े चित्त
                    कहीं उठकर खड़े हुए

●

● सूत्र

कठिनाइयां
श्रेष्ठतम जीवन की इकाइयां हैं
जीवन चटियल नहीं
पगडंडियां हैं पहाड़ियां हैं
उगीं
बढ़ीं
गिरीं
बीज, वृक्ष, फल की कहानियां हैं
छूटी कहीं नहीं
ये ही लौट-फिर बन जातीं
सतरंग धनु
स्वर्ण थालियां हैं

●

● सूत्र

आघात
भारी आघात
चोट
रक्तपात, विषाद
वक्त ऐसा हो
कहीं कुछ नहीं कैसा ही
वर्तमान
गत
भविष्यत्
सब वैसा ही
मन जैसा ही

●

● कुर्सी

कुर्सी का श्रेय
बहुत बढ़ गया
युग युग के ऐतिहासिक चिन्हों में
इसका भी पैर गड़ गया
मामूली-सी कुर्सी
चीड़ की
शीशम
हाथी दांत की
बेंत से बुनवा लो
रेशम से गुंथवा लो
सोने-चांदी से मढ़वा लो
दाम
असमान
काम एक समान

इसकी शान
श्रासमान का सूरज
ईद का चाँद
इसको जानता है बखूबी
गाँव का किसान
जितनी ही बड़ी कुर्सी
ऊपरी मिठास
भीतरी तुर्शी
भरी है विद्युत जितनी
काहिली या सुस्ती
सब टकसाली है
टकसाल में ढले सिक्कों-सी एक-सी गोल
कोई चांदी ठोस
कोई रांगा
रोल्ड गोल्ड
कुर्सी बोलती है
चढ़े रिकार्ड-सी
कुर्सी डोलती है फ़िल्म-स्टार सी
कुर्सियां नाचतीं तो टकरा जातीं
टकराना इनका परस्पर
ख़तरनाक
न रहती नाक
पानी बड़े बड़ों का उतर जाता
चमक का मुलम्मा शीघ्र धुल जाता
ऊँचे कोई चढ़ जाता
सिर पटक कोई रह जाता
दोष किसी का किसी के सिर मढ़ा जाता

बड़े बड़े प्लानों की फ़ाइल
चूहा कुतर जाता
काग़ज़ी लड़ाई में
उजला भविष्य रुक जाता

कुर्सी का भी अपना भाग्य है
कहीं सुनहली मोहरों ने ज़ंग खाया
टीन के टुकड़ों ने कहीं
नाम कमाया
कभी अधिकार बहुत-से मिल जाते
कभी हाथों के तोते उड़ जाते
नीचे की कौन कहे
तख्ते ऊपर तक उलट जाते

कुर्सी एक अजस्र धार है
ऊपर से नीचे तक
एक वही तार है
ज़रा छुओ
करंट लगता है
चमक उठता जब अचानक कोई
मक्खन वहीं पड़ता है
मानव मन भी
मशीन पर बैठते ही
यान्त्रिक हो गया
लाल फ़ीते का
मकड़ जाल
चारों ओर कस गया

चेतन यहाँ जड़ से ऐसा
बंध गया

गति ही गति
मति कुछ नहीं
देखती मानवी आंखें नहीं
हैं और की आंखें
है और की जबान

कुर्सी का ध्येय तब
कुर्सी का श्रेय जब
जड़ फ़ाइल में भी चेतन बोले
मृत काठ नहीं
जीवित इन्सान ही उसको खोले
मानवता की गोमुखी से
नई धार का प्रसरण हो
भागीरथी का अवतरण हो

●

समाज-ऊसर

उस बीज पर बहुत भरोसा था
सख्त जमीन को तोड़कर भी
निकलेगा
लगाएगा वृक्ष
फलों के सुखदायी
किंतु
यहां बबूल भी नहीं
दातुन को

● नए जुआरी

मिले थे दोस्त रात
बहुत ऊँचाई से की बात
अबकी
चुन चुन के बेदाग़ चाँद
लगाए हैं
रहेगी चाँदनी ही
न होगी अमावस रात

अब की जो मिले
कुछ न बोले
काट गए रस्ता
हाल था ख़स्ता
कारण
(सिक्योरिटी तक ज़ब्त थी)

●

● नई कसौटी

क्या ये
हवाइयाँ हैं
नहीं जी
रुबाइयाँ हैं
श्लेष, यमक, अलंकार में भीगीं

बेहतर तो ये था
होतीं ये सुराइयाँ
पानी की
काम तो आतीं

●

● जीवन : एक अछूता आयाम

मुक्त कर दो बादलों-सा
उड़े जीवन
अटकाव, रोक-टोक न हो
ढाले मनोनुकूल अपने को
निर्झर-सा
पहले धार पतली
अत्यधिक फिर
और फैले
चढ़े नदिया-सा
बढ़े फिर बाढ़-सा
कसे रहें ये हाड़
और अंत तक मुख चाँद-सा
मिले सागर से ये जीवन
उठी हुंकार-सा

अपाहिज, पराश्रित, पूर्व निश्चित
भाग्य तब क्यों हो
रंग हों साकार
लय ताल से तन विलय हो
न पतझार-सा
न उतर जाए किसी के हार-सा
न देखे कूल की भी राह
निरुद्वेग तब क्यों हो
वेग पर
मंझधार पर
अपनी चरम उठान पर
खलबलाती तर
मस्त लहरों पर
पूर्ण मीठा चाँद बन कर कंपकपाए
ठहर जाए
बूँद भी न ढलक पाए
रवि तेज न नत हो
न विश्राम पाए

पत्थरों में पला जीवन कठोर है
काजल को भींचे, धुएँ को घेरे
बैठा तरुण भोर है
क्यूं थके
पंख टूटे विहग-सा
अपाहिज, निश्चेष्ट
न पराश्रित हो शिशु-सा

जीवन ! अनुदान ?
चाह ?
याचना ?

शक्ति स्वयं की है निर्देशिका
उज्ज्वल पथ वरण
प्रवेशिका

●

● कोयल पिंजरे में पकड़ पाई

चली आई बेला सुहागिन
पायल पहिन
पगध्वनि मीठी-सी धीमी-सी करती
मदिरा पिलाती
झूम झूम झुकि झूलती
प्यार के हिंडोले में
नींद के झकोले लेती
वाण-विद्ध हरिणी-सी
बांहों में सिमट जाने की
उलझने की, लिपट जाने की
मोती की लड़ी समान

मांग में सेंदुर भरे
दूर दूर की वह

धुली धुली सी सुहानी धूप
आनन में समेटे
बरसाती श्यामल लटों से सजे सजे
हिम श्वेत पग पर
गड़ाए निज नीचे नैन
पुलकित कूक
बंद किए मंद ओंठों में
आम्र पर कुहकती कोयल
पिंजरे में पकड़ पाई

जीवन के बड़े बड़े नक्शे
फैल गए आगे
जो मुंदे थे अभी
आज निकल आए सभी
हटते ही लजीला घुंघटा
नक्षत्र-से चमकते अंग
आँखों में नशा लाए
दूर की मिलन वेला
आज निकट आई

●

● होली

होली की तीर समीर
फूलों कलियों को मींज मींज
डाली वेलों के बीच चली
आंचल खिसकाती साड़ी के
भर चली धूल से धरती का आनन सुन्दर
रंग में रंगती
नभ, पृथ्वी, एकाकार
देखो
बादल के टुकड़ों से रंग-वस्त्र को चीर
उडी जाती है आगे आगे
जहाँ होली में भूला भ्रम
क्षण भर को
मस्ती में
शर्म, लाज, ऊँच-नीच, सम्मान, मान

अभिन्न सहज स्पर्श
सभी समान
मचा रहे हुड़दंग
उड़ रहा रंग
तीर सी समा रही तन में
रानी के मन की भाव रेख भी अधिक
खिंची बढ़ी जाती है
चित्र बना जाता है अनुपम
पिचकारी की धार रसीली
निखरे बिखरे सब अंग अंग
ये तो
बाहिर का कुछ भाग बना है
उभरा उभार वायु का सुरभित
पूरा होते होते चित्र अभी फागुन का
कुछ मीठी सी देर और बाक़ी है
भीगे जल से तन
रंग से सींचे तन
केसर से
टेसू से पीले तन
अबीर गुलाल से छोटे कन
फूला मन
कहाँ बिखरकर
रानी के उदास श्वेत गुलाबों पर
गुलाबी अंकन
ला पाए हैं
फागुन की इस रंजित ऋतु में

●

● चिनार की घाटी के टुकड़े

निकल रहा था सूरज
उषा की फैल रही थी
चमकती बरफ़ पर रोली
उतर रही थी सुर्ख़ सेहत
पेड़ पत्तों फूलों पर
सफ़ेद, ऊंदा, लाल
उड़ रहा था इस डाल से उस डाल
बिखर उठा था मनोरम दृश्य
हिमाचल की स्वतंत्र वादी में
घने वन में
जो ढकी थी लंबे शीशम से
खड़े थे जहाँ देवदार कुंजों में
हुआ मद्धम शोर
उन चिहुँकती चिड़ियों का

मोर के पखेरू भी
चुगने को दूर गए
अचानक रुक रुक के चलने लगी हवा
पत्ते भी डर डरकर खींचते थे सांस
चुप थे खड़े लंबे शीशम
देवदार का कुंज भी कुछ सोच रहा
जैसे कोई जादू डर का सहम का
उन पर चढ़ गया हो
वातावरण को मिली आज्ञा तूफ़ान की हो
समय को तूफ़ान का भान ही हो

हज़ारों पांव साथ बढ़े
हज़ारों हाथ साथ पड़े
कट कटकर गिर गए शीशम
कुंजों की जगह हुए गढ़े
स्तब्ध, सुनसान चीख़ उठा
कांप उठी वादी भी
जब कुल्हाड़े तेज़ चले
वह शब्द कुल्हाड़ों का ठकाठक
सुनसान को चीर बढ़ता ही गया
भरता ही गया कोनों तक
फैल गया मीलों तक

पांच नदियों की मिली पंजाब
दूर ससुराल से आई हुई
गले मिली
बहिनों के गीत सी

धरती मिश्री सी
वहाँ के पानी में घोलती थी
उस पानी का पला गेहूँ
मिट्टी का बढ़ा गेहूँ
अपना सा सुनेहरापन बखेर देता था
मुख पर उषा के सांझ के
सुदृढ़ शीशम से
ऊँचे देवदार से युवक
उठते थे बढ़ते थे
धरती पर चलते थे
स्वतंत्रता भारत की
रंग वर्षों का इकट्ठा लाई थी
जो ढुलक पड़ा था
पेड़ पत्तों फूलों में
झूम उठे थे
किंतु तूफ़ान जो छिपा था
रंग लिए काले भीतरी पर्दों में
श्मशान बना डाली
पांच नदियों की मिली पंजाब
रंग सभी बदल गए
बदल गया चित्र भी भारत का
हो गया एक अंग ही ग़ारत-सा

●

● लीडर का निर्माता

सजा है
रेशम के पर्दों से ड्राइंग रूम
सोडे से, फिनील से
और गरम पानी से
धुल रहे बाथरूम

टावल रुँएं का हाथ
लांड्री धुला गोरा
कोठी से निकल रहा बैरा

चपरासी कसे बैल्ट
सेक्रेटरी लिए डायरी
गेट पर कार खड़ी
लोगों को इंतज़ार

कौन ग्रा रहा
लीडर ग्रा रहा

कौन है जा रहा
सड़ी है गली टपरे सी
टपरा सड़ा है घूरे सा
बम्बा है पानी का
घर से बहुत दूर
टूटे घड़े हाथ में
काई चढ़े
निकल रही छिपकली सी
लड़की दरवाज़े से
गली का पिल्ला बन
फिर रहा बच्चा
लिए खाली बोतल
मिट्टी के तेल की

कूड़े से भरी गाड़ी
खड़ी है गली के बीच
भंगी का इंतज़ार
गंदगी का संसार
जिसमें है बोल रहा
मौत के सिगनल सा
भोंपू दूर मिल का
भूखा ही

कौन है जा रहा
लीडर का निर्माता

●

दो शब्द चित्र

: परितृप्ति :

दो पेड़ों के नीचे
पीपल और नीम के पीछे
क़स्बे का बड़ा कुआँ
उसकी चौड़ी मेंड़ पर
और कोई नहीं
मौसी, काकी, भूआ
या कौल का भाई
पुकारे का भतीजा
रंगीली प्रणाली ये पनघट की
सख्त लड़ाई महाभारत की
कभी चुहलबाज़ी तलछट की
इनके तेज़ रंग रंगे कपड़े
केलिया के फूल से लगते

लाल पीले चटक
गुच्छों से सजते
रस्सिएँ कुंडली मारे भुजंग सी बैठीं
चमकती, मंजी, साफ कलसियाँ, टोकनियाँ
सर्प मणि का आलोक लिए
दूर से दिखतीं
और फैले दूर तलक लंबे सांप
मणियों पै झपटते या
नीचे को लटकते
पीपली से पीपल टपकते
नीम से पखेरू बीट भी करते
जो कुएँ की लाल मेड़ पर रुपये सी अंकित
हो जाती
किसी पनिहारिन को सांझ समय कुछ
ग़लतफ़हमी भी हो जाती
हँसी का यूं झटका लगता
समय खुशहाली में कटता

उधर कुएँ में टकरातीं परस्पर
गगरियाँ, टोकनियाँ
झमक जैसे गहनों से लदी
ब्याही बेटी
मिल रही कुठरिया में
पी के जाते में
नीर गिराती

५

: प्यास :

नल-कल दस पांच
लग गई हैं क़सबे में
पनघट की रंगीनी, जीवन
सिमट गया ज्यों तसले में
हिलती बहँगी की गति दबाव
कंधों का लरजना
पनिहारिनों का
अटक अटक के चलना रुकना
लहरता तन
आगे कभी पीछे मुड़ना
व्यायाम
काम

अब खड़े हुए आ पांत में
पतझर के पत्ते से
टूटे कनस्टर या पिचके डालडा के टीन
उठाने वाले जिन्हें
मरियल घोड़े से
कसे जीन
सजल मटकियाँ
चमकती कलसियाँ
काई का ओढ़ना ओढ़े
कुछ नंगे बच्चे नाले से निकल
चूहे से उस तरफ़ दौड़े
सुबह की टैम थी

भीड़ बेहाल थी
ज्यों किसी युवा की मौत पर
इकट्ठे हों
निराशा और प्राथमिक ज़रूरत का अभाव
मुँह बेरूअत
रुंआसे से
कपड़े मैले फटे, कोढ़ के चकत्ते से
नागिन सी फुफकारती थी
नल कल
सूं ऊँ.........पुनि बार
न पानी की धार उतरती थी
न भीड़ सिमटती थी
कोई कहता था नलकल में
छिपकली चिपटी थी

देख यूं हुज्जत झगड़े
पटे कुएँ की घास
तिलमिलाती थी
श्रम से बुझती प्यास
मानव-जीवन
नहीं घास

●

● अन्तर-तथ्य

कमल खुला
उधर गगन में रवि मुख धुला
इधर कुमुदनी विकसी
जब चंदा ने तारकों को धीरे से छुआ
इस वैभव के हाथ में सुन्दर
और सिकता यश लहरी में
कुछ तारक फूलों ने अश्रु गिराए
ये सहिष्णुता के मोती थे जो
दुलराए
या
विदग्ध मनों की ऊष्ण आह ने
भीतर ही अंगार बुझाए

●

● गलें फिर हिमशिखर

गरम हैं दिन
चमकता तेज़ सूरज
धूप उसकी
धरा के दिव्य रिफ़्लेक्टर से टकरा
गलाती गरम चाँदी
पसीना छूटता है
जलते हुए ईंधन के रस सा

गर्मी बढ़ रही है
गरम हैं दिन
ढके हैं घर महल
गहरे चुने रँग से
पड़े रंगीन पर्दे
लगे खस के सुगंधित नरम टट्टे

चू रहा ठंडा सुरभिमय मौन पानी
और सरसर बह रही है
शीत करती उस महल को
हवा जो बाहर गरम है
हो रहे हैं वस्त्र ठंडे
हो रहा ठंडा बदन
बरफ़ में ज्यों दबी हों
बोतल सुनहरे शरबतों की
हृदय ठंडा
रक्त ठंडा
औ, न गर्मी रही इतनी
देख ले जो
दहकते अंगार को
जो कि बढ़ते आ रहे हैं
जो कि बढ़ते जा रहे हैं

आज बाहर
गरम सूरज फेंकता गर्मी
चिलकती धूप खेतों पर
बोते बीज खेतीहर
गरम लोहू से सींचे विटप सारे
कि जिनके शरबतों से
हो रहे हैं महल ठंडे
गरम है चर्म उनका
जो स्वयं विद्युत की कल हैं
चलाते हैं हथौड़े
कि लोहा टूटता है
जल रही हैं भट्टियाँ

उगलतीं ग्राग जो सूरज से ज़्यादा
गरम हैं कारख़ाने
कि जैसे दिन गरम हैं
चमकता तेज़ सूरज
धूप उसकी
धरा के दिव्य रिफ़्लेक्टर से टकरा
गलाती गरम चाँदी

कि जिससे हिम शिखर जो जम गए हैं
कड़े जो पड़ गए हैं
बन गए कृत्रिम हिमाचल
जमे लोहू
बरफ़ दिल से
फूटे नई गंगा
चले फिर सलिल ठंडा
फ़सल देता हुग्रा हर ग्राम को घर को
नगर को
कि ज्यों हिमखंड से पहिले बही
भागीरथी गंगा

●

● बस स्टैंड

साँझ
घर में सुनसान
बच्चे चले गए थे खेलने
आफिस भी बंद नहीं हुए थे
खिड़की से देखा बाहर मन बहलाने
सैकड़ों ही साइकिलें
बीसियों रिक्शे तांगों की क़तारें
चमकीली परियों सी उड़ी जाती थीं कारें
जिन पर आँख भी ठहर न पाती थी
दूर से आती हुई बस मंद हुई
पहुँच रही थी स्टैण्ड के क़रीब
जहाँ लगा था लम्बा क्यू
पहली बस के चले जाने से भरी और भी
रहते थे कुछ ड्यू

लाइन और बढ़ी—
जिसमें
कुछ तो खड़ी थीं झुकी डाल
झुकी बाल की तरह
रंग लिए सुनहरा
किरणों में मिली
हिल रही थीं पल इधर पल उधर
बुलबुल की तरह
चुलबुल कुलबुल कर रहीं
कबूतरी के बच्चों सी
अभी ये अधपके संतरे की फांकें थीं
खट्टी मिट्ठी आँखें थीं
दसवीं कक्षा से नीची
खड़ीं थीं बस के इंतज़ार में
घर जाने की राह में

उनकी भीनी सुगन्धि से अलग
रूप तन से फरक़
तरबूज़ की फांकों से लाल ओंठ
टमाटरों से मुख धुला
पके कश्मीरी सेब का जिन पर रस पड़ा
लचकतीं पतले गन्ने की तरह जो
हर गांठ पर
हर जोड़ पर
हर मुस्कान पर
ज्यों मद भरा घट उलट पड़ा हो
एक अजीब जादू

स्वयं वेष बदले खड़ा हो

वहीं खड़े थे पास में
हरसिंगार, गेंदा, सदाबहार जो
तोते की तरह उलझने आते
रस भरे झाड़ पर
हरे भरे झुंड पर
इनके काले बाल रेशम के फन्दे से
जिनमें मधुमक्खियाँ फिसलतीं थीं
चाल में मदन भी हार गया
तीर कुसुम के पार गया

इधर मरुभूमि का वृक्ष भी
खिसियाता-सा कुछ
टेढ़ा शिथिल
गिरता सा अड़ा
बालू सा गरम माथा
ओंठ सूखे पत्थर से
काठ सा घुना हुआ शरीर
जान जिस पर चिपकी थी छिपकली सी
कर्ज़ की बढ़ी नुकीली सुई
जीवन में लगी
खुले रहते सदा ख़ाली हाथ
जिन हथेलियों ने गरमाई कभी जानी नहीं
आई मुसीबत चीर जो
निराली हंसी
भूडोल किसी ने कहा
दरियादिली गरम तवे पर

पानी की बूंद सी सूख गई

ये है
मरुभूमि का वृक्ष
आफिस से लौटता हुआ बाबू
स्टॉप लिखे स्टैण्ड ही को पकड़ सका
जो बस पर भी ठीक से चढ़ न सका

और
इसी समय
दरवाज़े पै रुकी कार
हो गया था आफिस बंद सबेरे का खुला
खिड़की खुली ही रही
हवा भी आती ही रही
न जाने कब तक
न जाने कब तक

●

● एक अनुभूति

जी की जलन
घाव की कुलन
दोनों समान हैं
खिचीं कमान हैं
जो छेड़ेगा वो बिंधेगा
ये ऐसा दुख
बिन छेड़े भी दुखेगा।

●

● नीम के फूल

झूला पड़ा है बड़े नीम
उठ रहे बढ़ रहे पींग
तरकश से निकलें ज्यों तीर
कमर पतली पर ज़ोर लगावे
धनुष सी घुमावै
पींग श्रौर ऊपर को जावे

घटा घिर रही
पीहर से आई अभी फिर रही
बिजली भरे ये गीत
कौंध कौंध जावें
फैले बयार से
उठे कगार से
तरंग से

चढ़े मृदंग से
मर्दाने में लहर सी आवे
लपट सी आवे
नीम तले जाने को
बड़ा जी चावे
बड़ा कसमसावे
गुड़गुड़ी भी रुक रुक जावे

बिछौना बिछा नीचे दूब
हरा लाल पल्ला सलौनी का खूब
नीम के फूलों से भरभर जावे
कड़ुई निबौली बड़ी झर झर जावे

सासू जी के दाब दूं मैं पांव
खूंटी पै बैठ कऊआ करे कांव
छोटी ननद ने कहे जो हमें बोल
बेसरम घूंघट रही काहे खोल
सामने जेठ जी ठाढ़े
कड़ुई पाती से लागे
थू, नीम की पाती से लागे
गोरी जिठनियां बैठी नयन चलावे
जी जलजल जावे

हरी तरोई के बड़े बड़े फूल
चमकते कनफूल
पिया के नयन ही दो

डोलते हिया पै किश्ती से लागे
उनके कहे से जी जाऊं
उनके कहे से मर जाऊं
वही हमारे तो सब कुछ लागे

●

● काले मेघ

काले मेघ
कोयले के पहाड़
रेल के धुंए के गुब्बार
घिरते आओ
बरसते आओ
रुई के गाले से हलके
लिपटते आओ
फैलते सिमटते घुमड़ते आओ

बड़े नगरों में
बिचके कसबों में
छोटे गाँवों में
हर तिमंज़ले घरके ऊपर
हर छोटी छत पर

हर छप्पर पै रुकते आओ
आओ मेघ आओ

कालिदास के युग की तरह
पाती संदेश की ले जाओगे
या शिवाजी की बढ़ती हुई सेना की
धूल में खो जाओगे
हाँ—युग की नायिका सीता ने भी
तुम्हें याद किया था
तुम्हारे गर्जन से भय लगा था
विरहिन का हृदय कँपा था
आज भी दूर बहुत दूर
प्रिया देख रही तरसाई आँखों से मधुमय तुमको
आज भी ठक ठक है चलती हुई भारी फौजों के
बूटों की
पर मेघ तुम्हें दूत नहीं बनाना
आज ख़ाकी वर्दियों की धूल में
न खो जाना
आज एटम का धड़ाका तुमसे ज़्यादा
उसका आतंक भारी है
वह रास्ते में दूत तुम्हें कुचल देगा
उसका उठता हुआ भयंकर धुंआ
धरती से उठी धूल को भी मसल देगा
फिर भी तुम आओ
न कांपे विरहिन न सही
तुम उसके घर पर ठहरते आना
खिड़की से झांक कर आना

तुम्हें देख शीतल हो उसकी जलती छाती
वो ठगी सी देखती रहे तुमको
एक चित्र बना देना
कुछ क्षण को ही सही
दिल बहला जाना

न सही
कालिदास
तुलसी
भूषण
आज भी आओ
काले मेघ सजल श्यामल
सघन, नवल
काले कमल
मेरे देश की सूखी वनस्पति हरी करना
काली बहू सी धरती पर
गहनों की चमक-सी
बिजली भरना
नगर के सूखे उपवन सदा
फूलों से भरना

आओ काले मेघ
तुम हमारे मेहमान बनो
किन्तु इतना न बरसना
बाढ़ आ जाए
मेरे गांव के छप्पर, घर बह जांय
मिट्टी की खड़ी दिवारें, खपरैल ढह जांय
इतना न बरसना

कि
नदियाँ नगरों को सुला लें
अपनी गोदी में करोड़ों को बुला लें
तुमसे सब डर जांय
भय खांय
तुम्हारा नाम भी न लें
ऐसा न करना
ए मेरे
मेहमान
एटम के धड़ाके के पश्चात् भी
तुम रूठ न जाना
मेरे देश से दूर न जाना
काले मेघा !

● पूजा

पूजे सांप
कुछ मिले इन्हीं से वरदान
कांपे पांव
मन विद्रोही बोला
थोड़े से सुख को
खोता है अपना धर्म सनातन
अविरत ज्ञान

पूजे पत्थर
रोपे पुष्प
यश गान सुनाए
मन विद्रोही बोला
क्या इनके भी हो सकता अन्तर
मत पूजो पत्थर

पूजे चित्र
संलग्न स्थिर
मांगा प्रसाद
मन विद्रोही बोला क्या किया
अब होगा सर्वनाश

पूजे भाव
बड़े चाव
बहुत दूर तक बिछल चले गए
मन विद्रोही बोला बड़े चतुर बने
खो दिया गांठ का भी सब अपना
मत देखो सपना

फिर तो कभी न पूजे सांप
न पूजे पत्थर
न पूजे चित्र
न पूजे भाव
पूजा कर ली अपनी ही फिर
मिटे उसी क्षण जीवन भर के सभी
शाप

●

● जल-चांद

कुछ
आंका
आकर झांका
ये
वनस्थली
पुष्पों की झरन
घन मिलन
ये निकला चांद कभी नहीं मुझे भाया
नदि का तीर
बहता नीर
हूक पीर
जीवन के बहाव में अवरोधी चट्टान बन
क्या समाया।
अजस्र धार को छितराया

मेरे जल में क्यूं पूर्ण चांद डगमगाया
नहीं ये तूफान
कुछ नहीं लाया
न सीप न मोती
लहर कुछ कमल यहाँ बोती
कमलों को मोह
यहाँ का बिछोह
कहीं कुछ भी तो नहीं
फिर क्या ये सपना जगा था
ये निकला चाँद
कभी नहीं मुझे भाया

●

● अहं का खोख

सख्त
सुदृढ़ बाह्य
अन्तर ज्वाल
तहों में दौर्बल्य
बहुत सी प्यास छिपाए
उमस
भभक
श्लेष बनाने ही में जीवन को
कौशल चातुर्य
तुम जिस तेज के इच्छुक
ऊष्मा वही लील रही
सोख रही तुम्हारी
उर्वर धरा का रस सारा
तुम दिन प्रतिदिन हो रहे बंजर वंध्य

व्यक्तित्व का झूठा दंभ
अहं घटाटोप
बना लिया जिसे एक कोहनूर
वह भी सदा ही हुआ चूर
लाख इकाइयों में क्या
एक ही इकाई
इस अखंड खाई को रही पूर

मीठी ऋतु का अनूठा योग
समरस ऋतु की सरसता
कीच कमल की सी पारस्परिकता
विलगता
क्या नहीं श्रेष्ठता
सीमाबद्ध दुर्दशा तुम्हारी
अंकुर फूटें तो
खिले खुले विकसित गंध
काई पर जीवन चले तो
कीच से कमल खिले तो
तुम मात्र विश्वास हो
झूठे सूर्यों के चाँद के
जो असलियत से दूर
बहुत दूर हैं

●

● कौन सी ऋतु आई

छिप गया चमकीला चांद
घुंघटे में
उकसे अंकुर
विकसे फूल
रस की भरी गगरिया
भरे जल कलस
नहाई वसुन्धरा
पहिरा धानी दुकूल
वृक्ष, पल्लव
कहाँ थी छिपी ये धानी चुनरिया
जो धीरे से स्वयं उग आई
ऐसी कौन सी ऋतु छाई
परती धरती भी श्यामल नववधू सी शर्माई
सघन कुंजों में

कोयल की स्फुरित गूंज
कुलवधुओं के गान मीठे
भर देते मन में कुहुक
घन घहर घहर
विद्यु ता लहर लहर छितराई
कौंध कौंध चकाचौंध कर अति सुहाई

इंद्रधनु धरा पर उतर पड़े
प्रस्फुटित जलजाल
जल की बहार, बौछार
नयनों के बाण नदि के तीर से
कस चले
भर चले
ऐसी कौन सी ऋतु
इस क्षण उठती ऊदी, काली घटाओं में
समाई
मन की बेल चढ़ाई

●

● मेघ-जीवन

लघु बादल के काले टुकड़े को
नभ पर छाते देख रहा हूँ
इसका ये प्रसव-काल है
अर्पण फल
समर्पण धरती को
आया है
चाह प्रपीड़ित सरसाया बरसाया है

इन झाड़ों में
कुछ वर्षों के उगे हुए इस तरुण अरुण
नए वृक्ष को देख रहा हूँ
जिसका पहिला नया फूल
फल की आशा से उन्मत्त झांक रहा है
कितनी सीढ़ियाँ चढ़ उतर हर्ष भरा

सफलता के उन्माद से उमगाया है

बादल के इस लघु टुकड़े को
तेज़ पवन का एक ही भारी झोंका
क्षण में रुई सा धुनक धुनक विलय
कर देने में समर्थ
और इस नए वृक्ष का जीवन भी कै दिन का
आसपास की हरियाली ही इसको
लील ले
दीमक इसको छीज दे
किन्तु ये असमय का ललकता अंत
अंत ललक
कभी नहीं
ये ही तो जीवन है
जीवन की विद्युता
जन की समग्रता

●

● भीगी है बात

भीगी है बात
भीगी है रात
भीगी है पास की अमराई भी
पपिहरी फिर रही इधर उधर घबराई
बौराई सी
चाँद बादलों में से
अभी तक निकल क्यूं नहीं आया
भटक गया कहीं झील के कगारों में
अटक गया दूर गई नावों में, उड़ते हुए पालों में
अस्फुट गूंज
अनुगूंज ही
दूर की लहरों पर ला रही बात
परियों की छायाओं से कोमल आरक्त
उगे पात आस पास

सो रहे फूल भी सभी
करते थके इन्तज़ार
स्वेद कण झलमलाए ओस कण से भाल पर
कर याद भर अबेरी की
अनायास हुई देरी की

भीगा मन
उलझा तन
सुधि के सहारे
आसमानी रंग

धरती का रस
मिला जुला हास विलास
सब तुम्हें अर्जित समर्पित
जीवन की सारी मिठास तुम्हारी
अंधियारे की वे भूत रूप आकृतियाँ
बेढंगे बोल
स्वर डरावने
डरी हुई सी कालिमा सिक्त परछांइयाँ
वे भी जो जीवन के साथ साथ आतीं
वे सभी मेरी हैं
हुई जो देरी है
उठा रही क्षण प्रतिक्षण शंका आशंका
मेरी तुम्हारी नहीं बात
आज मुझे अनायास ही हुआ भास
बहुतों की ऐसी निकल गई होंगी अधीर सारी रात

प्रिया ने काट दी चुपचाप जीवन यामिनी
नहीं की उस टीस को कुछ बात
नहीं की
टीस की कुछ बात

●

● फूलों के झुरमुट

हौले हौले की पदचाप
दबी पवन के साथ सुनाई पड़ती
तंद्रिल अलकों का अटकाव
सुलझना
फिर फिर साफ़ सुनाई पड़ता

चुप सोई इस नई चमेली के नीचे
नूपुर किसके मंद लजीले बज उठते हैं
इतनी रात गए—

गहरी खुशबू केसर की
बढ़ी हुई मेंहदी के नीचे फैल रही है

पीला पड़कर सूरज नीचे उतरा
या सहमा सा चांद उतरकर
उलझ गया है
फूलों के झुरमुट में

●

● तुम सुंदर हो, घर सुंदर हो

जब मैं थका हुआ घर आऊं, तुम सुंदर हो घर सुंदर हो

चाहे दिन भर बहें पसीने
कितने भी हों कपड़े सीने
बच्चा भी रोता हो गीला
आलू भी हो आधा छीला

जब मैं थका हुआ घर आऊं, तुम सुंदर हो घर सुंदर हो

सब तूफान रुके हों घर के
मुझको देखो आखों भर के
ना जूड़े में फूल सजाए
ना तितली से वसन, न नखरे

जब मैं थका हुआ घर आऊं, तुम सुंदर हो घर सुंदर हो

अधलेटी हो तुम सोफे पर
फॉरिन मैगज़ीन पढ़ती हो
शीशे सा घर साफ पड़ा हो
आहट पर चौंकी पड़ती हो

तुम कविता मत लिखो सलोनी, मैं काफी हूँ, तुम प्रियतर हो
जब मैं थका हुआ घर आऊं, तुम सुंदर हो घर सुंदर हो

● बदली का चांद

जहां भीगी रातों को लिपटाए
सोता है आसमान
गहरे श्याम घनों से ढका
छुपा कर छाती में चांद
बेहोश बना आसमान

अधरात सुनसान
बाहर सूने पथ पर
रात है निकलती
बैठ जाता पथिक अकेला
आंख मूंद पड़े पत्थर पर
दो दो मन के पांव हुए जो
हल्के करने
जली हुई आंखों में
रीते सपने भरने

●

● मध्यवित्त

बीन है, सितार है, वायलिन है
पर ज़िंदगी
खोखला भोंपू है
सायरन है

गीत
अब रीत सी है
भाव रस विहीन
कड़वी कुनीन सी है
अर्थ के पुआल पर पड़ा पड़ा
सोच रहा
जीवन के भाव का
उतार चढ़ाव आज क्या है

क़ीमत चढ़ने की जगह
गिरती ही जाती
बाती इंसानियत की
कटती ही जाती

●

● फिक्र का लबादा

यह लबादा फिक्र का
पहिना है क्यूं
छोड़ते को जी न होता
फिर ग़मों से भागता है क्यू
छोड़ कर ही देखले
होता है क्या

मन तेरा रंगीन है
दिख रही रंगों भरी ही यह ज़मीं
मन मिलाना रँग मिलाना सीखले
मन मिलाकर देखले
होता है क्या

कहीं चक्कर घूमते हैं दुःख के

रंग दिखते लाल
या बदरंग—औ' बेहाल
कहीं करहन और सिसकन
छूटते हैं हंसी के भूचाल
रस निराले जग के सारे
लूट कर ही देखले
होता है क्या

●

● रिक्त चितवन

आज रसीली चितवन फैली
रिक्त गगन में
क्यों नहीं किसी की आंखों में गड़ पाती
कांटा सा चुभ जाती
अंबुधि सा भर देती
तूफान उठाती
लहरों पर लहरें धरकर
झाग बिछाती
जीवन का फल मिले किसी को
क्यों नहीं
किसी की आंखों में गड़ पाती

तीखी हो
मादक कटु हो

पैनी कटार सी लग कर
अन्तस्तल भेद
मानस भावों में भर जाती
क्यूं शून्य गगन में फैली
तेजहीन हो व्यर्थ,
सीमित घेरे में
अशक्त हो
प्रान बिंदु बिखराती
आज अकेली गाती

मादकता खाली उंडेलती
रिक्त गगन में
भर दे पथ
उपवन
ग्राम, देश
नदियां, पहाड़
सागर, समतल
रंगीन धरा हो
लाल शराब सी फैले
चार दिनों का बाग़
सुरभि से पूरित हो
शरबत का झरना सा फूटे
मन की पृथ्वी ओत प्रोत हो.
कोई डूबे

● हिम शिला

हिम-शिला !
तुममें जीवन है
तुम शिला
फिर भी हिलता दीप की लौ सा
तुम्हारा हिया
तभी तो तुम पिघल-पिघल कर रसधार सी बही हो
इंद्रधनु के रंग भी जब-जब तुम पर पड़े हैं
कठले पर आने को मोती परस्पर लड़े हैं
तुम दीप्त हो दुगनित रंगों से उन किरणों को
स्वीकारतीं
सूर्य जब तुम्हें खींचता
आकर्षित हो तुम वाष्प ऊष्म उसकी ओर
निहारतीं
गरम बादल जो पास तुम्हारे जाते ठंडक देतीं

तुम धैर्य की मूर्ति
सब गुण तुममें साकार
फिर भी तुम शिला !

शिला तुम्हें नहीं बनाया किसी ने
स्नेह अंबुधि पर ठेस लगी जमी तुम्हारी गंगा
ऐसी ठेस लगाने वाला और कौन
वह पशु नहीं
पशु तो प्यार पहिचानते
अन्त तक निबाहते
ये काम किसी मानव का है
तुमने स्वयं शिला होना स्वीकारा
ये अधिक सत्य है
नहीं तो तुम हिम शिला न होकर
पत्थर होतीं
तुम्हारे छिपे बदन में रस अब भी बोलता है
कहां नहीं रस घोलता है
ये भेद तुम्हारा कौन जान सका है
किंतु मैंने जान लिया है

शिला बना जीवन ही जग में नारी का
कौन भावना बची तुम्हारी
कौन भावना मुक्त हँसी बढ़ी
कौन भावना अकेली ही पली खिली
अपनी गति जमाई तुमने
हितार्थ दूसरों के निर्झर फिर नदी बहाई तुमने
बहुत सुखी हो

मैंने तुमसे सीख लिया बरफ हो जाना
और फिर जमते जमते शिला एक दिन
जाते आते तूफान भयंकर
भूडौल बवंडर
रोक पाऊंगी
इतनी शक्ति समो पाऊंगी

●

● आंधी का दिया

धन्य दीपक
इतनी आंधियों के बाद भी
तू रोशन है
जलते जलते ध्यान रहे
कालख व धुंआ
इतना न बढ़े
मुँह पर पुते
आंख भरे
ज्योति बुझे

●

● कलाकार की आवाज़

ओ पास के परिचित
हरे भरे के साथी
तुम इस पथ में अजाने से, अपरिचित से लगते
इस नीम की छायाओं में
सपनों की छाया से चलते
ये भरा पथ भी उजाड़
ये भरा मन भी उजाड़
दो चांद इस खुले आकाश में यों
लुटे लुटे भटकते

हवा जो समुद्र की लहर सी आती थी
रखे मिले दो सितारों सी एक राग गाती थी
हर समय की स्वर गंगा
क्या क्या न रूप, रस, गंध सरसाती थी

आज उस प्यार के आकाश में टूटे हुए
तारे की रेख सी भी कहीं नहीं
रुक गया सब कुछ वहीं
कलाकार भाव है, मूर्ति नहीं
मूर्ति तो तुम उसे बनाते हो
गहराई में डूब जाता है
तुम उसे उठाते हो

बालक सा
क्षण भर में ऊबता है
बंधी गाँठें खोलता है
आनंद के इस उबाल को, मनस्ताप को
न संभाल पाता है
तभी गीत गाता है

समय कट गया थोड़ा सा
कलाकार बरगद सा झूम उठा
अब एक एक पत्ते को
उसकी हर थिरक को
डालों की झूम
लटों की घूम
जड़ों को आंकने का समय तो दो, साथी
डूबा रहा तुम्हीं में तो
क्या तस्वीर आंक पाएगा

ज्यों-ज्यों मन मथेगा
त्यों-त्यों सूना भी मेंहदी सा पिस-पिस रचेगा
क़लम चलेगी अधिक रसवती होकर
नए-नए रंग आ बसेंगे
बासी फूलों में
तुम देखोगे नई लहर आ रही है सूखे कूलों में
तब हर चाँद इस चाँद पर रुकेगा
हर रस यहीं इस बूंद पर चुकेगा
इसलिए पास के परिचित
तुम अजाने से, अपरिचित से रहो

● अन्तर की पूर्णता

चाँदनी की सित उज्ज्वलता, शीतलता
आज कुछ कम है
इन काले बादलों से जो चारों ओर से घिरे आ रहे
किंतु क्या उसकी पूर्णता में कुछ कमी है
ये उसे कैसा भ्रम है
प्रदर्शन तो
भीतर की किसी कमी को व्यक्त करता है

• सिहरन का भार

उन्होंने कहा
आज फिर पूरनमासी का चांद
निकला है
देखो ना —
मैंने 'हूँ' कहकर
टाल दिया
मदमाती सिहरती हवा पर
अपनी भी सिहरन का भा
डाल दिया

•बसंती फूल

जीवन में जो चाहा अब तक

वही मिला है

इसीलिए तुझ पर जो विश्वास जमाया था

वह नहीं हिला है

कई बार आए भूचाल

काँपे घर के द्वार दीवार

ऐसा लगा अनेक बार

अबकी ढह पड़ेगा ये किला है

किंतु पतझर होने पर भी

इस गमले पर

हर बार बसंती फूल खिला है

जीवन में जो चाहा

अब तक वही मिला है